इकाई 13 जनपद एवम् महाजनपद*

इकाई की रूपेरखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 प्राथमिक स्रोत : साहित्यिक एवम् पुरातात्विक

13.3 मुखियातंत्र से राज्य तक – *जनपद, महाजनपद, गणसंघ*

13.4 नगरीकरण के आधार : ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन

13.5 ''द्वितीय नगरीकरण''

13.5.1 नगरीकरण के पुरातात्विक चिन्हक

13.5.2 साहित्य में वर्णित प्रारंम्भिक ऐतिहासिक नगर

13.6 नगरीय केन्द्रों का सामाजिक स्तरीकरण

13.6.1 व्यापार एवम् व्यापारी

13.6.2 नवीन निवेशक – *गहपति* एवम् *सेठी*

13.7 समाज

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इसके बारे में जान सकेंगे :

- छठी शताब्दी बी.सी.ई. भारतीय इतिहास में एक प्रमुख मील का पत्थर क्यों थी;
- राजतंत्रीय और गैर-राजतंत्रात्मक दोनों तरह की विभिन्न प्रकार की राजनीतिक संरचनाएँ अस्तित्व में आई; तथा
- इस अवधि में उभरने वाली आर्थिक और सामाजिक जटिलता।

13.1 प्रस्तावना

लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. से 300 बी.सी.ई. तक का समय उत्तरी भारत के इतिहास में ऐतिहासिक युग का प्रारंभ माना जाता है। यह भारतीय इतिहास की एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना थीं, जिसके परिणाम अत्यन्त दूरगामी सिद्ध हुऐ। भारत में राजकीय व्यवस्था का आरम्भ इस काल की सबसे बड़ी विशेषता थी। भारतीय इतिहास में पहली बार प्रदेशाश्रित राजनैतिक संस्थाओं की शुरुआत हुई, ये संस्थायें *महाजनपद* के नाम से प्रचलित हुई तथा लगभग पूरे उत्तरी भारत में इनका विस्तार हुआ। नगर एवं नगरीय जीवन का, जिसका हड़प्पा सभ्यता के पश्चात् पतन हो चुका था, एक बार पुनः गंगा घाटी से लेकर उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र तक में प्रादुर्भाव हुआ।

* प्रीती गुलाटी, इतिहास अध्ययन केन्द्र में पी.एच.डी. छात्रा, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

नगरीय जीवन के साथ जुड़ी सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक जटिलतायें भी समाज में परिलक्षित हुई। इस युग में नये धार्मिक सम्प्रदायों तथा दार्शनिक विचारधाराओं का भी उदय हुआ, जिसका अध्ययन पूर्व इकाई में किया जा चुका है। ये धार्मिक समूह और विचार तत्कालीन ब्राह्मणों के अनुष्ठानों तथा धार्मिक वर्चस्व का विरोध करने के उद्देश्य से स्थापित हुऐ थे। इन आन्दोलनों में, जैसा कि हम पूर्व में अध्ययन कर चुके है – सर्वप्रथम बौद्ध और जैन धर्म थे। इस काल में नगरों का उद्भव हुआ और व्यापार का विस्तार हुआ। धातु मुद्रा के प्रयोग के साथ-साथ इस समय में धनाड्य वर्गों का उदय, श्रेणियों, विशिष्ट मृदभांड़ों, सूदखोरी, जनसंख्या वृद्धि, शिल्प और विशिष्टीकरण, तथा लेखन एवं पाठन का आरम्भ इस युग को जीवंत बनाता है। उत्तर भारत में राजनैतिक, भौतिक और सांस्कृतिक जीवन में एक साथ और अन्तः सम्बन्धित परिवर्तनों को भारतीय इतिहास में 'दूसरा शहरीकरण' कहते हैं।

इस इकाई में हम छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उपमहाद्वीप के *जनपदों*, *महाजनपदों*, *गणसंघों* आदि के राजनैतिक गठन को देखेंगे। हम यह भी देखेंगे कि ये आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन के साथ कैसे जुड़े थे, मुख्यतः कृषि और वाणिज्य विस्तार से।

अंत में हम उन विभिन्न सामाजिक वर्गों और समूहों को भी देखेंगे, जो इस काल में प्रचलित थे।

इस युग के अंत में, एक राजनैतिक व्यवस्था जैसे मगध के सर्वशक्तिशाली राज्य के रूप में उभरी, जिसका अध्ययन हम आगामी इकाई में करेंगे।

13.2 प्राथमिक स्रोत : साहित्यिक और पुरातात्विक

अब हम उन स्रोतों का अध्ययन करेंगे, जिनका प्रयोग इतिहासकारों द्वारा 600-300 बी.सी.ई. के युग को समझने व इसका पुनर्निर्माण करने में किया जाता है।

हमारे साहित्यिक स्रोत मुख्यतः तीन महत्वपूर्ण धार्मिक साहित्यों से उद्धृत किये गये हैं – जो मुख्यतः बौद्ध, ब्राह्मण, एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित हैं। आरम्भिक बौद्ध साहित्य साधारणतः धर्मवैधानिक और गैर धर्मवैधानिक साहित्य में उपलब्ध है। धर्मवैधानिक साहित्य बौद्ध धर्म अथवा सम्प्रदाय के मूल सिद्धांतों को निर्धारित करता है। यह धर्मवैधानिक साहित्य मुख्यतः *त्रिपिटक* कहलाते हैं (तीन पुस्तकों का संग्रह या पिटारा)। ये तीन हैं – *विनय पिटक*, *सुत्तपिटक*, *अभिधम्म पिटक*। *सुत्त पिटक* में बुद्ध के विभिन्न विषयों पर उपदेशों को वार्तालाप के रूप में संग्रहीत किया गया है। *विनय पिटक* में संघ के मठ-निवासियों, भिक्षु एवं भिक्षुणी के लिये अनुशासन सम्बन्धित नियमों का संग्रह है। *अभिधम्म पिटक* बाद में लिखा गया है, इसमें *सुत्त पिटक* की शिक्षाओं को शास्त्रीय ढ़ग से सूचीबद्ध आख्यानों एवं प्रश्नोंत्तर के रूप में समावेश है। बुद्ध के पूर्व जन्मों का वर्णन करने वाली *जातक* कथायें *सुत्त पिटक* का हिस्सा हैं। पाली भाषा में *त्रिपिटकों* का रचनाकाल पांचवी शताब्दी से तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. का था। *पिटक* तीन अन्य पुस्तकों में विभक्त है, जिन्हें *निकाय* कहा जाता है। बौध धर्म वैधानिक ग्रंथों को मध्य गंगा घाटी यानी आधुनिक बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के भौगोलिक संदर्भ में देखा जा सकता है।

ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक अनुष्ठान करने के तरीकों से संबंधित है। इसी तरह, दार्शनिक समस्याओं से निपटने वाले *उपनिषदों* को भी वैदिक साहित्य का एक हिस्सा माना जाता है। इन ग्रन्थों की रचना 800 बी.सी.ई. से हुयी थी। वे कई *जनपदों* और *महाजनपदों* का उल्लेख करते है और हमें कृषि समुदायों के बारे में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

उदाहरणस्वरूप, 600 बी.सी.ई. से 300 बी.सी.ई. के इतिहास की संरचना में पुरातात्विक स्रोत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। विशेषरूप से उस समय में प्रचलित काले-एवं-लाल मृदभांड तथा उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड (NBPW) विशेषरूप से अपनी तकनीकी उत्कृष्टता के लिये प्रसिद्ध है। उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड प्राप्त स्थलों से हमें आहत (Punch marked) सिक्के भी मिले जो भारतीय उपमहाद्वीप में मुद्रा प्रयोग का प्रारम्भ दर्शाते हैं। हम उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांडों का विस्तृत अध्ययन इस इकाई के अन्तिम भाग में करेंगे। ग्रन्थों में उल्लिखित कई स्थलों की खुदाई की गई है जैसे कि अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, कौशाम्बी, उज्जैनी, श्रावस्ती, वैशाली आदि। भौतिक साक्ष्य जो इस अवधि के लिए उपयोगी है, वे हैं घर के अवशेष, लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुएं, मृदभांड, सिक्के आदि।

13.3 मुखियातंत्र से राज्य तक : *जनपद, महाजनपद, गणसंघ*

जनपद का शाब्दिक अर्थ – एक ऐसा स्थान जहाँ व्यक्तियों का समूह या जनजातियों (*जन*) के पैर या पद पड़े हों। इस प्रकार *जनपद* इस प्रकार के व्यक्तियों का समूह हैं जो सुनिश्चित क्षेत्रों में निवास करते हों और जिनके ऊपर राजनैतिक वर्ग द्वारा प्रशासन होता हो।

मुखियातंत्र से *जनपद* का स्थानान्तरण दो चरणों में हुआ – सर्वप्रथम यज्ञ और बलि द्वारा जिसमें पुजारी वर्ग ने राजा को दैवीय स्थान दिया। दूसरे चरण में, *जनपदों* और *महाजनपदों* के रूप में राज्यों का उदय हुआ। *महाजनपदों* के शासक *जनपदों* के शासकों से अधिक शक्तिशाली थे।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. के आस-पास इस प्रकार के अनेक नगरों एवं राज्यों का उद्भव देखने को मिलता है। ये नगर और राज्य उत्तर पश्चिम में गंधार से पूर्वी भारत में अंग तथा मध्य भारत और दक्षिण तक फैले हुऐ थे। बौद्ध धर्म की पाली पुस्तकों जैसे *अंगुत्तरनिकाय* में 16 बड़े-बड़े राज्यों का उल्लेख है, जो सोलह *महाजनपद* कहलाये। इनका विवरण निम्नलिखित है –

मध्य गंगा घाटी

1) **अंग** – पूर्वी बिहार के वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले को अंग राज्य के रूप पहचाना गया है। यह गंगा नदी एवं चंपा नदी के संगम पर स्थित था तथा इसकी राजधानी चंपा की पहचान भागलपुर के निकट स्थित आधुनिक चंपापुर या चंपानगर के रूप में की गयी है। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में यह एक महत्वपूर्ण नगर के रूप में विकसित हुआ, तथा यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था जो कि व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। चम्पा में उत्खनन से शहर के चारों ओर खंदक (खाई) सहित रक्षात्मक किलेबन्दी (दुर्ग) का पता चलता है। यात्रियों के विवरणों से अनेक ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि व्यापारी चंपा से स्वर्णभूमि की यात्रा करते थे (संभवतः दक्षिण-पूर्व एशिया के संदर्भ में)

2) **मगध** – चौथी शताब्दी बी.सी.ई. तक मगध सबसे शक्तिशाली राज्य बन गया था। मगध जनपद में बिहार के आधुनिक पटना और गया जिले आते हैं। यह उत्तर, पश्चिम तथा पूर्व में क्रमशः गंगा, सोन, तथा चंपा नदियों से तथा दक्षिण में विंध्य पर्वतमाला से घिरा था। इसकी प्रथम राजधानी गिरिव्रज या राजगृह (आधुनिक राजगीर थी)। इस नगर का महावीर और बुद्ध दोनों के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध था। हालाँकि बाद में इसकी राजधानी पाटलीपुत्र स्थानान्तरित हो गयी थी, जो कि आधुनिक पटना से सम्बन्धित है। राजगृह में उत्खनन से कई रक्षा संरचनाओं के निर्माण का पता चलता

है, जैसे कि पत्थर की किलेबन्द दीवारें, जो छठी शताब्दी बी.सी.ई. में बिम्बसार और अजातशत्रु के समय की है।

3) **वज्जि / वृज्जि संघ** – वज्जि गणराज्य पूर्वी भारत में गंगा नदी के दक्षिण भाग में स्थित था, इसकी राजधानी वैशाली थी। यह बिहार के मुजफ्फरपुर के बैसाध क्षेत्र में स्थित था। वज्जी गणराज्य की गिनती बुद्ध कालीन अति प्रसिद्ध *महाजनपदों* में होती है। मगध के राजा बिम्बसार ने भी वज्जि गणसंघ से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। अधिकतर इतिहासकार वज्जी राज्य को आठ या नौ गणों का महासंघ मानते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस प्रकार के गणराज्यों में सभी गणों का स्थान एक समान था तथा संघ में प्रत्येक का अपना स्वतंत्र अस्तित्व था। अधिकतर बौद्ध व जैन साहित्यों में गणसंघों, विशेषकर वज्जियों को क्षत्रियों के रूप में वर्णित किया है, परन्तु इससे यह प्रमाणित नहीं होता है कि वे एक वर्ण व्यवस्था वाले समाज का अनुपालन करते थे। इन्होंने राज्यों से भी अधिक अपनी गण परम्पराओं को बरकरार रखा था। उन्होंने गण प्रतिनिधियों द्वारा गठित सभाओं (यद्यपि से सभायें गणों के मुखिया एवं परिवारों तक सीमित थी) से प्रशासन को चलाया।

4) **मल्ल** – मल्ल नौ गणों का संघ था जो वज्जि राज्य के पश्चिम में स्थित था। मल्लों के राज्य में कुशीनारा और राजधानी पावा दो राजनैतिक केन्द्र थे। कुशीनारा की पहचान कसिया प्रदेश से की गयी, जो गोरखपुर से 77 किमी. पूर्व में स्थित है। 'पावा' के विषय में इतिहासकारों में मतभेद हैं। इतिहासकार इसे आधुनिक बिहार के पावापुरी में मानते हैं, जबकि अन्य इतिहासकारों का मत है कि ये कसिया से 26 किमी. दूर उत्तर-पूर्व में स्थित है। मल्ल वज्जियों के घनिष्ट मित्र थे, परन्तु कभी-कभी दोनों के बीच संघर्ष के उदाहरण भी मिलते हैं।

उनके पश्चिम में

5) **काशी** – सबसे पहले राजनैतिक प्रभुसत्ता प्राप्त करने वाले *महाजनपदों* में काशी राज्य प्रमुख था। यह उत्तर में वरूण नदी तथा दक्षिण में असि नदी से घिरा था। इसकी राजधानी गंगा किनारे बसे वाराणसी का नाम इन दो नदियों के नाम पर पड़ा। *जातक* कथाओं से हमें काशी और कौशल राज्यों की लम्बी प्रतिद्वन्दिता के विषय में जानकारी मिलती है। अन्ततः कोसल के साथ प्रेसनजित (पाली में पसेनदी) के शासन काल में काशी को कोशल राज्य में मिला लिया गया। वर्तमान में काशी उत्तर-प्रदेश के बनारस से जुड़ा है।

6) **कोसल** – शक्तिशाली कोसल *जनपद* राज्य पूर्व में सदानीर (वर्तमान गंडक), पश्चिम में गोमती, दक्षिण में सर्पिक या स्यान्दिक तथा उत्तर में नेपाल की पहाड़ियों से घिरा था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी, जिसकी पहचान उत्तर-प्रदेश के सहेत-महेत नामक दो गाँवों से की जाती है, तथा दक्षिण कोसल की राजधानी कुशावती थी। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार बौद्ध अनुयायी अनथपिंडक ने बौद्ध संघ को 'जेतावन' उपहार के रूप में दिया था। इस राज्य में साकेत और अयोध्या अन्य दो महत्वपूर्ण राजनीतिक केन्द्र थे। प्रसेनजित, (जिसे पसेनदी भी कहा जाता है), बुद्ध के समकालीन थे, वह कोशल का अत्यन्त प्रसिद्ध शासक था। कोसल राज्य को वर्तमान उत्तर-प्रदेश के लखनऊ, गोंडा, फैजाबाद तथा बहराइच स्थानों के रूप में पहचाना गया है।

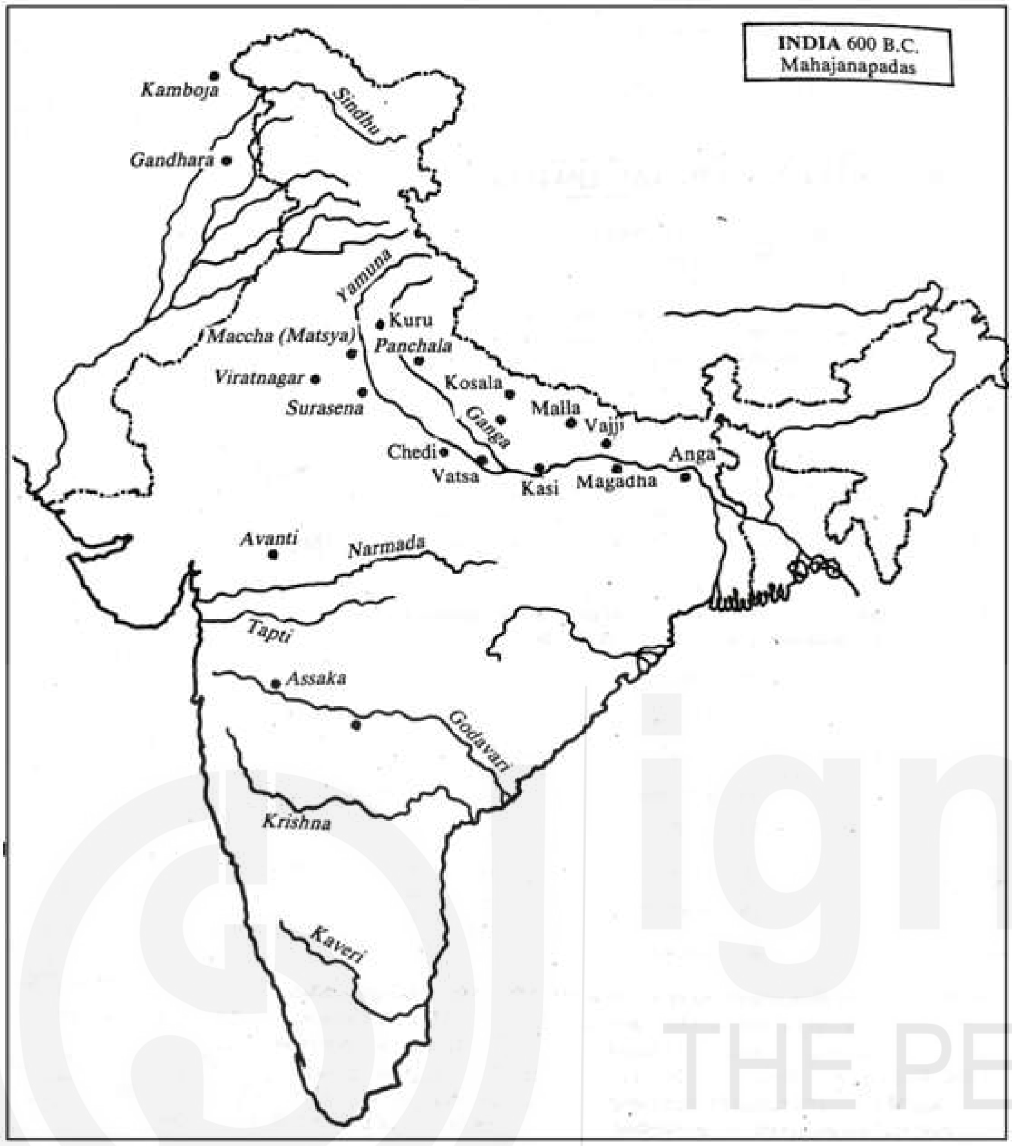

मनचित्र 13.1: महाजनपद. स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4.

7) **वत्स** – वत्स या वंश राज्य सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी वर्तमान इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी में स्थित थी। व्यापारिक मार्ग पर बसा कौसाम्बी दक्कन, गंगाघाटी तथा उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रों को जोड़ता था। जैसा कि उत्खनन से पता चलता है, छठी शताब्दी बी.सी.ई. में राजधानी कौशाम्बी की भव्य किलेबन्दी की गयी थी। वत्स के प्रसिद्ध शासक उदयन के नेतृत्व में शक्तिशाली *महाजनपद* था। इसी समयावधि में अवन्ति में राजा प्रद्योत शासन कर रहा था। हमे इन दोनों राज्यों के मध्य प्रतिद्वन्दिता के अनेकों उदाहरण अनुश्रुतियों में मिलते हैं। विशेषरूप से बाद में लिखे गये लगभग तीन संस्कृत नाटक *स्वप्नवासवदत्ता*, हर्ष द्वारा रचित *रत्नावली* एवं *प्रियदर्शिका* में राजा उदयन को अधिवक्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उसके और आगे पश्चिम

8) **कुरू** – कुरू वर्तमान के गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र में बसे हुए थे। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार कुरू राज्य का शासन युधिथिला गोत्ता (गोत्र) के शासकों ने किया जो कि युधिष्ठिर के परिवार से सम्बन्धित थे। इनकी राजधानी इंद्रपत्त (इन्द्रप्रस्थ) थी। महाकाव्य में कुरू की राजधानी हस्तिनापुर में थी, जिसे बाढ़ आने पर राजधानी कौशाम्बी में बदलनी पड़ी। जैन साहित्य *उत्तराध्ययन सूत्र* में कुरू राज्य का शासक

इसुकारा बताया गया है, जिसने इसुकारा नामक नगर से अपना शासन किया। ऐसा माना जाता है कि बुद्ध के समय तक कुरू राज्य में राजतन्त्र शासन व्यवस्था थी जो कि बाद में एक गणसंघ में बदल गई। यह भी ज्ञात है कि इन्होंने यादवों, भोज एवं पांचालों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे।

9) **पांचाल** – पांचाल *महाजनपद* में वर्तमान रूहेलखण्ड शामिल था, और यह गंगा नदी द्वारा दो भागों में बंटा था। इस राज्य की भी दो राजधानियाँ थी – उत्तरी पांचाल क्षेत्र की राजधानी अहिच्छत्र (वर्तमान उत्तर-प्रदेश के बरेली का रामपुर क्षेत्र) थी, तथा दक्षिण पांचाल की काम्पिल्य थी (उत्तर प्रदेश के फारूखाबाद जिले के कांपिल क्षेत्र)। *अर्थशास्त्र* में पांचाल को आरम्भ में राजतन्त्रीय प्रणाली बताया है जो बाद में गैर-राजतन्त्र में परिवर्तित हुई। इस *महाजनपद* में प्रसिद्ध (महत्वपूर्ण) नगरीय केन्द्र भी थे जैसे – कान्यकुब्ज या कनौज।

चित्र 13.1: अहिच्छत्र के अवशेष. श्रेय : सूनीत 87. स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ahichchhatra_Fort_Temple_Bareilly.jpg

10) **मत्स्य** – मत्स्य वर्तमान राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, अलवर और भरतपुर में स्थित था। इनकी राजधानी विराट नगर (वर्तमान वैराट) का नाम मत्स्य राज्य के संस्थापक राजा विराट के नाम पर पड़ा। बौद्ध साहित्य में इनका सम्बन्ध सूरसेन से बताया गया है।

11) **सूरसेन** – सूरसेन की राजधानी मथुरा में स्थित थी और वे भी यमुना के दोआब क्षेत्र में स्थित थे। बौद्ध स्रोतों के अनुसार सूरसेन का एक शासक अवन्तीपुत्र बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसके अपने नाम का अर्थ (अवन्ति का पुत्र) सूरसेन और अवन्ति के मध्य वैवाहिक सम्बन्धों का संकेत देते हैं। अन्य अनेकों राजनीतिक केन्द्रों की तरह मथुरा भी मार्गों के संगम (Junction) पर स्थित था, जो महत्वपूर्ण उत्तरी मार्गों को दक्षिण से तथा पश्चिमी तट से जोड़ता था।

उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों की ओर

12) **गांधार** – पाकिस्तान के आधुनिक पेशावर और रावलपिंडी जिलों ने गांधार राज्य का गठन किया। इसकी राजधानी तक्षशिला या तक्षिला व्यापार और शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र थी। उत्खन्न से प्राप्त यहाँ तीन महत्वपूर्ण पुरातात्विक बसावट का पता चलता है – भीर टीला, सिरकप, और सिरसुख। भीर टीला प्राचीनतम् शहरों में से एक था, इसकी सर्वप्राचीन सतह से चाँदी के आहत सिक्के तथा अन्य सिक्के प्राप्त हुऐ हैं। लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में गांधार राज्य में शासक पुक्कुसती या पुष्करासरीन शासन कर रहा था जिसने अवन्ति के विरूद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त की। उसके मगध से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे।

13) **कम्बोज** – (पाकिस्तान के हज़रा जिले में) कम्बोज प्रदेश, गांधार से घनिष्ट रूप से जुड़ा था। कम्बोज पाकिस्तान के हज़रा जिले के वर्तमान राजौरी क्षेत्र का हिस्सा था। लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक कम्बोज एक राजतन्त्रीय राज्य था, परन्तु बाद के साहित्य जैसे – *अर्थशास्त्र* में उन्हें *गणसंघ* कहा गया है।

मध्य एवं दक्षिण क्षेत्र

14) **अवन्ति** – अवन्ति *महाजनपद* मध्य भारत के मालवा क्षेत्र में स्थित था। अवन्ति की दो राजधानियाँ थी, एक उज्जैयनी (मध्य प्रदेश का वर्तमान उज्जैन के पास) और दूसरी महिश्मति (मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित वर्तमान मन्धाता)। ये दोनों नगर महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थे जो ऐसे व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे, जो उत्तरी भारत को दक्षिण तथा पश्चिमी तटों के बन्दरगाहों से जोड़ते थे। अवन्ति का सर्वप्रसिद्ध शासक प्रद्योत था, जिनका सैन्य संघर्ष वत्स, मगध और कोसल राज्यों से हुआ।

15) **चेदि** – (राजधानी सुक्तिमती – मध्य प्रदेश के वर्तमान जबलपुर क्षेत्र में स्थित) चेदि राज्य मध्य भारत में बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग में स्थित था, विद्वान इसकी राजधानी सोथीवतीनगर को *महाभारत* के शुक्तिमती या शुक्तिसहवाय से जोड़ते हैं। सम्भवतः नर्मदा घाटी में स्थित जबलपुर के निकट का प्राचीन नगर त्रिपुरी और सागर के निकट स्थित एराकिना (एरण) चेदि राज्य का हिस्सा थे।

16) **अस्सक या अस्मक** – (महाराष्ट्र के गोदावरी घाटी में नन्देर के निकट राजधानी गोवर्धन) अस्सक राज्य का विवरण अनेकों स्रोतों में मिलता है, जैसे – पाणिनीकृत *अष्टाध्यायी, मारकण्डेय पुराण, बृहतसंहिता* आदि। बौद्ध साहित्य इन्हें महाराष्ट्र में गोदावरी नदी के निकट बताते हैं। इसकी राजधानी पोतना/पोदना थी जो कि वर्तमान बोधान है। *जातक* कथाओं से यह ज्ञात होता है कि एक समय में अस्सक काशी के अधिकार में था और उसने पूर्वी भारत में कलिंग पर सैन्य विजय प्राप्त की।

यह एक अत्यन्त रोचक विषय है कि सोलह *महाजनपदों* का उल्लेख कुछ विविधताओं से विभिन्न स्रोतों में उपलब्ध है। उदाहरणार्थ – *महावस्तु* में गांधार और कम्बोज के स्थान पर पंजाब के शिबि और मध्य भारत के दशर्न को बताया गया है। इसी प्रकार *भगवती सूत्र* में दी गयी *महाजनपदों* की सूची निम्न है – अंग, बंग (वंग), कोच्छ, मगाह (मगध), मलय, मालवा, अच्छ, वच्छ (वत्स), लढ़, पढ़ (पाण्ड्य या पौन्द्र), बज्जि (वज्जि), मोलि (मल्ल), कासी (काशी), कोसल, अवाह और सम्भुत्तर (सिंह, 2008 : 261)।

मोटे तौर पर ये राज्य संरचना में दो भागों में विभक्त हो सकते हैं : राज्यतन्त्रीय राज्य एवं गैर राजतन्त्रीय राज्य जिन्हें *गणसंघ* कहा गया है। राजतन्त्रीय *महाजनपद* अधिकतर उपजाऊ गंगा के मैदानों में स्थित थे, जबकि *गणसंघ* हिमालय की तलहटी या उत्तर पश्चिमी भारत, पंजाब या सिन्ध या मध्य या पश्चिमी भारत, की परिधि में स्थित थे। उनकी अवस्थिति से प्रतीत होता है कि *गणसंघ* राज्य *महाजनपदों* से पहले के हैं, क्योंकि निचली पहाड़ियों में रहने के लिये उन्हें साफ करना आसान होगा अपेक्षाकृत मैदानी क्षेत्रों के दलदली जंगली के। यह भी हो सकता है कि उदारवादी सोच के व्यक्ति उस समय की रूढ़िवादी सोच और जटिल जाति व्यवस्था से असंतुष्ट होकर जमीन की समतल क्षेत्र से पहाड़ियों की तरफ़ एक समरस समाज की स्थापना हेतु स्थानान्तरित हुए। वास्तव में उस समय के दो विधर्मिक सम्प्रदायों के शिक्षक इन्हीं गणसंघों से थे जैसे जैन धर्म के महावीर, वज्जि के जन्त्रिक सम्प्रदाय से थे जबकि बुद्ध शाक्य वंश में जन्मे थे।

गणसंघों का विवरण इतिहासकार गणतंत्रों अथवा कुलीनतन्त्रों के रूप में करते हैं। गणसंघात्मक ढांचे में राजतन्त्र व्यवस्था के विपरीत सत्ता विसरित थी अर्थात व्यक्तियों के समूह द्वारा सामूहिक रूप से प्रशासन व्यवस्था क्रियान्वित होती थी। *गण* उस समय के क्षत्रिय वंश से सम्बन्धित होते थे और उनके सदस्य या तो उस से मूल रूप से जुड़े होते थे अथवा उनसे नातेदारी सम्बन्ध का दावा करके जुड़ जाते थे। इस प्रकार की व्यवस्था में सामाजिक स्तरीकरण बहुत कम देखने को मिलता है। *गणसंघ* में केवल दो सामाजिक स्तर थे – *क्षत्रिय राजकुल*, जिनमें शासन करने वाले परिवार सम्मिलित थे, तथा दास कर्मकार जैसे – श्रमिक एवं दास। भूमि का आधिपत्य सामूहिक रूप से *गण* का होता था जिस पर श्रमिक और दास-*दास कर्मकार*-कार्य करते थे। यहाँ यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि ये नातेदारी के संबंधो से जुड़े रहते थे, जबकि श्रमिक और कर्मकार गैर-नातेदारी श्रम था। प्रशासनिक क्षेत्र में राजा वंशानुगत नहीं थे, अपितु वे मुखिया के रूप में होते थे, जिन्हें *गणपति*, *गणराज* या *संघमुखिया* के नाम से जाना जाता था।

हालांकि अधिकतर *महाजनपद* राजतन्त्रीय थे, परन्तु *गणसंघ* के विपरीत इन राज्यों का शासन प्रभुसत्ता प्राप्त राजा द्वारा होता था जो सत्ता के एक परिवार में संकेद्रित होने से अन्ततः एक वंश बन गये थे। शासन वंशानुगत हो गये, जिनका आधार सदैव नहीं परन्तु अधिकतर ज्येष्ठा के सिद्धांत पर आधारित था। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली राजतन्त्रों के पास एक शक्तिशाली सेना होती थी, इस सेना की नियुक्ति एवं निर्वाह राज्य द्वारा किया जाता था, इस प्रकार के इन राज्यों एवं आद्य राज्यों के उद्‌भव की प्रक्रिया नगरीकरण की प्रक्रिया से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित थी। इस प्रक्रिया की स्थापना को वास्तव में उस समय के जीवन निर्वाह में हुऐ परिवर्तन के परिवेश में देख सकते हैं। छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक आते-आते समाज व्यवस्थित कृषि से परिचित हो गया था। परन्तु इसके पश्चात् क्या परिवर्तन हुऐ?

13.4 नगरीकरण के आधार : ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन

जनपद ग्रामीण क्षेत्र को भी लक्षित करता है जो कि *पुर* या नगरों जैसे शहरी केन्द्रों से भिन्न थे। यह क्षेत्र संसाधन समृद्ध था, विशेषकर कृषि संवर्धित संसाधनों से। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि अधिकतर *महाजनपदों* का विकास उपजाऊ गंगा के मैदानी क्षेत्रों में हुआ था। राज्यों का उदय केवल कृषि संसाधनों पर नहीं बल्कि कृषि अधिशेष पर भी निर्भर था। इस अधिशेष का प्रबन्ध एवं पुनर्वितरण सत्ता और शक्ति का आधार बना।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक भारतीय ऊपरी गंगा घाटी और गंगा-यमुना दोआब, में कृषि आधारित समाज स्थापित हो चुका था। भारी वर्षा तथा उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी ने क्षेत्र को धान की उपज के लिये उपयुक्त बनाया। पाणिनी की व्याकरण की पुस्तक से भी हमें उस समय की कृषि के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है, उदाहरणार्थ – व्याकरण में इस बात का उल्लेख है कि अच्छी तरह से जोती गई भूमि को *सुहाली* कहा जाता था। *वृहया* भूमि धान (वृद्धि) के लिये प्रयुक्त थी, *यव्य*, गेहूँ (*यव*) तथा *तिल्या* (तिल) के लिये उपयुक्त भूमि थी। सभी स्रोतों में धान की उपज को प्राथमिकता दी गयी है और सर्वश्रेष्ठ धान को '*साली*' कहा गया है। उपजाऊ भूमि की उपलब्धता के साथ-साथ तकनीकी विकास अधिकतम उपज के लिये उत्तरदायी था।

फसल उत्पादन में बढ़ोतरी के महत्वपूर्ण परिणाम हुए। प्रथम, उत्पादन में बढ़त से *महाजनपद* के शासकों को कृषि करों में बढ़ोतरी से लाभ हुआ। बढ़े हुए करों से प्राप्त धनराशि का प्रशासनिक एवं सैनिक शक्ति पर व्यय किया गया। इस प्रकार से यह राज्य

व्यवस्था की नींव का आधार बना। द्वितीय, अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि धान (चावल) प्रयोग करने वाले समाज की प्रजनन दर अधिक होती है। गंगा घाटी के उपजाऊ क्षेत्र में धान की अधिक उपज का प्रभाव जनसंख्या वृद्धि पर पड़ा होगा। नगरीय केन्द्रों में अधिक निवासी थे और जनसंख्या का घनत्व अधिक था। तृतीय, इन नगरवासियों को जीवनयापन के लिये कृषि अधिशेष की आवश्यकता थी क्योंकि ये स्वयं कृषि नहीं करते थे। जैसा कि हम अगले भाग में विमर्श करेंगे कि नगरों में अनेक गैर कृषि व्यवसायी निवास करते थे, जैसे – चिकित्सक, लिपिक, मनोरंजनकर्ता, शिल्पकार, कारीगर इत्यादि। अगले भाग में हम व्यवसायिक विभिन्नताओं पर विचार करेंगे।

13.5 'द्वितीय नगरीकरण'

भारतीय इतिहास में 600 बी.सी.ई. से 300 बी.सी.ई. का लगभग तीन शताब्दियों का काल 'द्वितीय नगरीकरण' कहा जाता है। हड़प्पा के नगरीकरण के लगभग एक सहस्राब्दि पश्चात् छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उत्तर भारत में नगर एवम् नगरीय जीवन के उदाहरण प्राप्त होते हैं। द्वितीय चरण में नगरीकरण के संदर्भ में भौगोलिक स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। नगरीकरण का केन्द्र सिन्धु घाटी (प्रथम चरण) से अब गंगा घाटी (द्वितीय चरण) की तरफ़ खिसक गया। दक्षिण भारत में यही प्रक्रिया कुछ समय उपरान्त हुई। अनेक विद्वान तमिलनाडु में नगरीकरण और ऐतिहासिक चरण के आरम्भ का समय लगभग 400 बी.सी.ई. निश्चित करते हैं। नगरों और शहरों का उद्भव एक समान नहीं था। कुछ नगर जैसे – हस्तिनापुर, मगध में राजगृह, कोसल में श्रावस्ती तथा वत्स में कोशाम्बी का उदय राजनैतिक एवं प्रशासनिक केन्द्रों के रूप में या सत्ता के केन्द्र के रूप में हुआ। अन्य नगर व्यापार के केन्द्रिय स्थल और पड़ोसी क्षेत्रों के लिये विनिमय का केन्द्र भी थे। इन केन्द्रों पर विनिमय की वस्तुएं नमक एवं अनाज के अतिरिक्त ज्यादातर लौकिक थी। उज्जैन जैसे कुछ ऐसे महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र भी हुए जिनमें कीमती एवं महत्वपूर्ण वस्तुयें विनिमय की जाती थी। कुछ शहरी केन्द्रों का उद्भव धार्मिक स्थलों के रूप में हुआ। जैसे – 'वैशाली', जहाँ व्यक्ति धार्मिक अनुष्ठानिक उद्देश्यों के लिये आते थे। इन नगरीय केन्द्रों की विशेषता थी कि इनमें लोगों का संकेदूण अधिक था और यहाँ पर उत्पाद एवं रोजगार के अवसर अधिक थे।

साहित्यिक स्रोतों में यह भी विवरण मिलता है कि नगर अकसर गांव के ऐसे समूहों से मिलकर बने जहाँ लोहारगिरी, मृदभांड निर्माण, बढ़ईगिरी, कपड़े-बुनाई, टोकरी-बुनाई इत्यादि व्यवसायों का विशेषीकरण था। जहाँ या तो कच्चा माल (जैसे – कुम्हार के लिए मिट्टी या बढ़ई के लिये लकड़ी) नजदीक में उपलब्ध हो या उन्हें उत्पाद बेचने के लिये बाज़ार भी मिलता हो। उन स्थानों पर शिल्पकार कारीगर एकत्रित होते हैं। उनके एक स्थान में संकेन्द्रित होने से नगरों की नींव पड़ी तथा इस प्रकार के एक स्थान पर समूह के रहने से उत्पादन एवं वितरण में सहायता मिली और ये नगर वाणिज्यिक केन्द्रों के रूप में स्थापित हुऐ। वैशाली, श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, कौशाम्बी और काशी (मानचित्र 13.2) इस प्रकार के वाणिज्यिक केन्द्रों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं जिनका गंगा घाटी के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसी प्रकार उज्जैन, तक्षशिला, एवं भड़ौच के बन्दरगाह जैसे शहरों ने गंगा के मैदानी क्षेत्रों से भी आगे के बाजारों के भौगोलिक दरवाजे खोल दिये।

इस प्रकार हम यह देखते है कि विभिन्न आयामों और समरूपता वाले शहर उभर कर सामने आये। इनमें से कुछ राजनैतिक सत्ता के केन्द्र बने, अन्य केन्द्र शिल्प उत्पादन एवं विर्निमाण के केन्द्रों के रूप में उभरे, जबकि अन्य व्यापार के महत्वपूर्ण केन्द्र और कुछ इन तीनों कार्यों का सम्मिश्रण करते थे।

13.5.1 नगरीकरण के पुरातात्विक चिन्हक

पुरातात्विक स्रोतों से ज्ञात होता है कि समस्त नगरों का सुंसगत और असाधारण रूप से लगभग एक समान अभिन्यास या खाका होता था। अक्सर ये नगर एक खाई या प्राचीर से घिरे होते थे और कभी-कभी इनकी किलेबन्दी भी होती थी। किले की दीवारों में या तो मिट्टी भरी होती थी जैसा कि राजघाट में देखा जा सकता है या बाद में ईंटों द्वारा बनाया जाता था, जैसे कि कौशाम्बी में। जो नगर नदियों के किनारे बसे थे, किले की दीवारें एक ओर उन्हें बाढ़ से बचाती थी और दूसरी ओर हिसंक जानवरों एवं लूटमार से रक्षा करती थी।

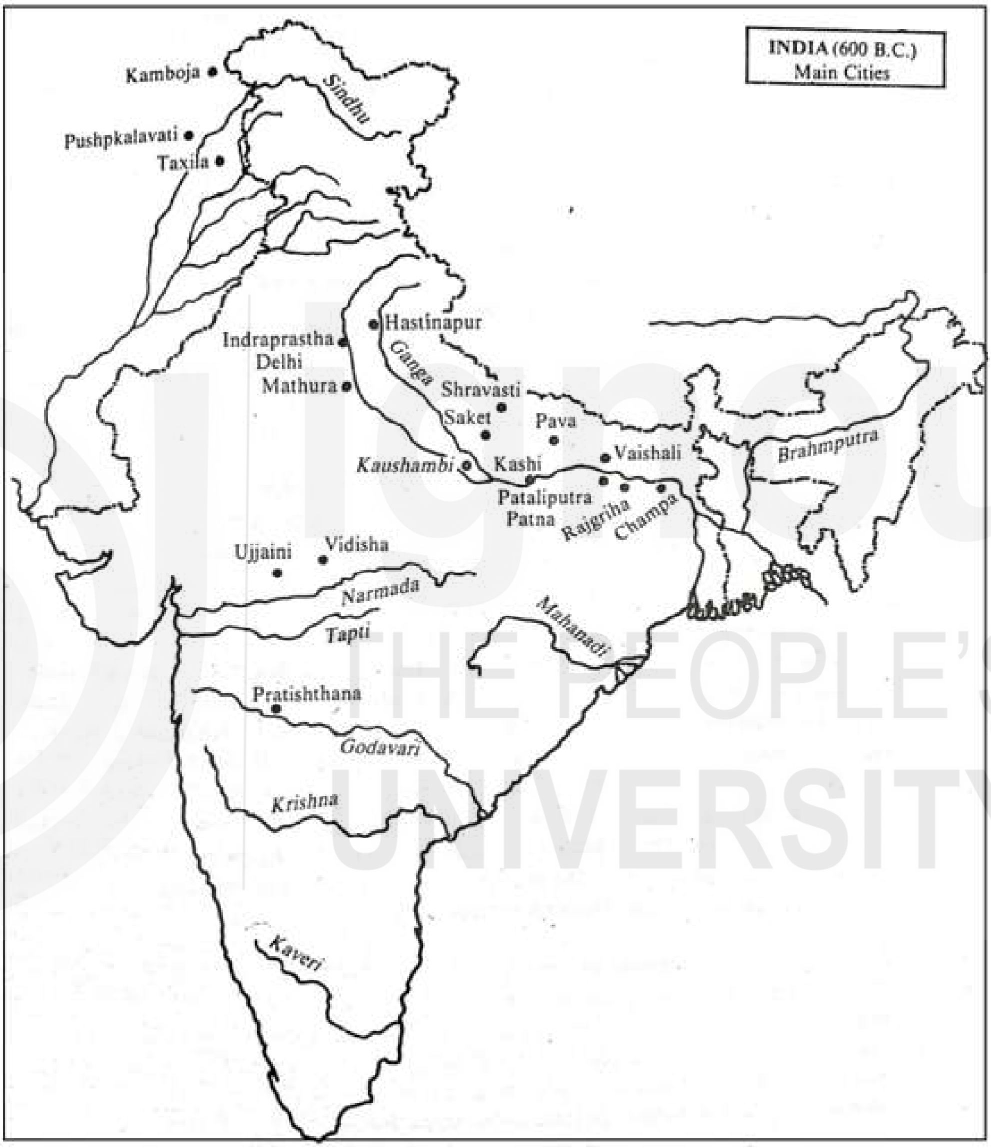

मानचित्र 13.2 : छठी शताब्दी बी.सी.ई. के प्रमुख नगर। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4

नगरों को सैनिक संरक्षण की आवश्यकता क्यों थी?

प्रशासनिक केन्द्र होने के अतिरिक्त, इन्हीं केन्द्रों के कोषागार में आसपास के क्षेत्रों से एकत्र किये गये राजस्व जमा किये जाते थे। जिसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों पर आक्रमण का डर रहता था, इसलिये इस प्रकार की रक्षात्मक किलों की दीवारों का निर्माण हुआ। इस प्रकार किलेबन्दी ने भौतिक सीमाओं के रूप में काम किया, जो गांव से शहरों को स्पष्ट रूप से सीमांकित करती थी।

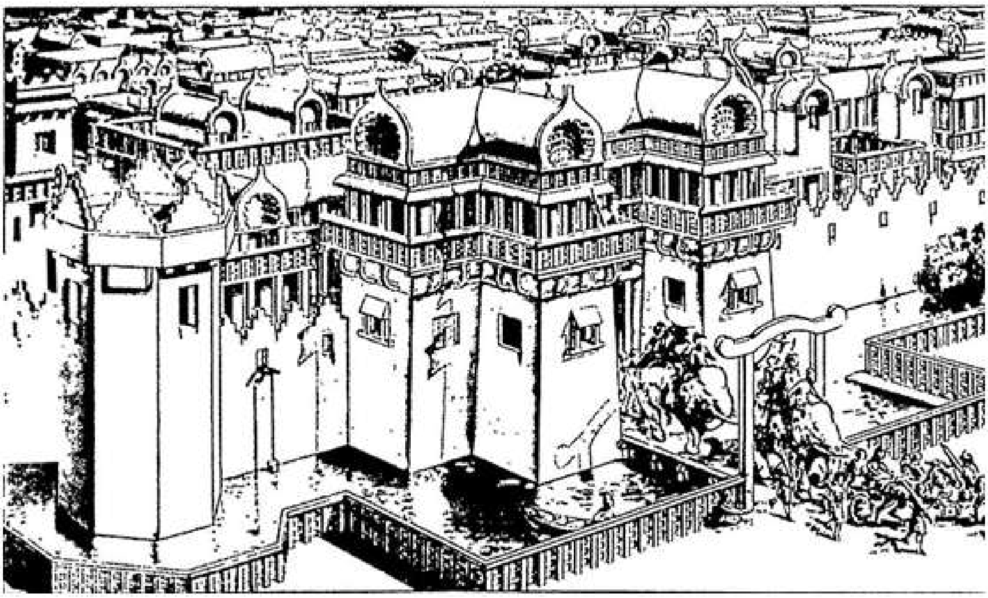

चित्र 13.2: लगभग 500 बी.सी.ई. में कुशीनगर के मुख्य द्वार का अनुमानित पुनर्निर्माण। सांची के महान स्तूप के दक्षिणी प्रवेश द्वार पर उभारी नक्काशी से अनुकूलित। स्रोत : पर्सी ब्राउन, विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Conjectural_reconstruction_of_the_main_gate_of_ Kusinagara_circa_500_BCE_ adapted_from_a_relief_at_Sanchi.jpg)

इसके अतिरिक्त उत्खननों ने नगरीकरण के विशिष्ट लक्षणों को भी उजागर किया है। इनमें इस प्रकार की सुविधायें शामिल थी जैसे भट्टे में पकी इंटें, जल निकासी व्यवस्था, छल्लेदार कुएं, शोष-गर्त (soak pit) जो हड़प्पा कालीन संरचनाओं से भिन्न थे। घरों का निर्माण भी पूर्व काल के घरों से बेहतर था। उदाहरण के लिये भीर के टीले में एक प्रांगण के चारों ओर घरों का निर्माण किया गया था। विद्वानों का मत है कि घरों में जो कमरे सड़क की ओर खुलते थे वे दुकाने रही होगीं (थापर : 2002 : 141)। सड़कें भी समतल थी, जिससे प्रतीत होता है कि पहियेदार यातायात का प्रयोग होता था।

नगरीकरण के साक्ष्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरातात्विक साक्ष्य उत्तरी काले पालिश वाले मृदभांड (NBPW) थे। आरम्भिक ऐतिहासिक नगरों के पुरातात्विक उत्खनन अधिकाशतः यह दर्शाते है कि NBPW चरण नगरीकरण का सहमियादी था। उदाहरण स्वरूप दिल्ली में पुराने किले की खुदाई से NBPW चरण का तिथिक्रम तीसरी और चौथी शताब्दी बी.सी.ई. में निर्धारित किया गया है। इसी सतह से कुछ अन्य कलाकृतियां उपलब्ध हुई हैं जैसे पक्की मिट्टी (Terra-cotta) के बने हुऐ मनुष्य एवं जानवरों की लघुमूर्तियां, मिट्टी की मुहरें, पत्थर की बनी मूर्तियों के टुकड़े, पक्की मिट्टी के बने घोड़े और घुड़सवार आदि। इसी प्रकार हस्तिनापुर में उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदंभाड चरण, जिसे 'पीरियड तृतीय' के नाम से जाना जाता है, उस चरण में सुनियोजित योजना के तत्व, पक्की ईटों की संरचनाएं तथा टेराकोटा के छल्लेदार कुएँ दिखते हैं। इस प्रकार इन खुदाई स्थलों से उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड की सतह नगरीय विशेषताओं से सम्बन्धित हैं।

13.5.2 साहित्य में वर्णित प्रारंभिक ऐतिहासिक नगर

साहित्यकारों ने नगरों की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं को और सुदृढ़ करते हुऐ *पुर* (नगर) एवं *जनपद* (गांव) में स्पष्ट भेद प्रदर्शित किया है। यह भेद अनेकों तरीके से देखा गया है – नगर और इसके लोकाचार ने जीवन में स्थापित मानदंडों और प्रतीकों पर संदेह करने के लिए प्रोत्साहित किया, विभिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को अलग-अलग स्थानों में न रह कर एक साथ सामीप्य स्थानों पर रहने के लिये प्रोत्साहित किया। सम्भवतः इसी

विविधता के परिणामस्वरूप अधिकांश साहित्यिक स्रोत अत्यधिक सतर्क है और कभी-कभी उनके दृष्टिकोण नगर के प्रति तिरस्कार पूर्ण हैं। उदाहरणार्थ *अपस्तम्ब धर्मसूत्र* में नगरों में वेदों के अध्ययन को मना किया गया है। इसमें यह भी निर्देशित किया गया है कि स्नातकों (व्यक्ति जिसने ब्रह्मचारी के रूप में अपना अध्ययन पूर्ण किया हो) को नियमित रूप से नगरों में नहीं जाना चाहिए।

दूसरी ओर हम देखते है कि बुद्ध और उनके बिरादरी के भिक्षु, यहाँ तक कि आम अनुयायी भी नगरों के तौर तरीकों से भली-भाँति परिचित थे। बौद्ध धर्म के स्रोतों से भी ज्ञात होता है कि नगर और ग्राम साधारणतः विरोधाभासी नहीं थे। अपितु मानव निवास अधिकाशतः सतत था, जिनका *ग्राम, निगम* और *नगरों* में पदानुक्रमित वर्गीकरण किया गया था। यहाँ ग्राम का अभिप्राय गाँव या ग्रामीण इलाकों से था जबकि *निगम* बाजार वाले कस्बे थे जो कि व्यापारिक गतिविधियों से सम्बन्धित थे तथा *नगर,* शहर को कहा जाता था।

नगरों में भी वर्गीकृत पदानुक्रम था। उदाहरणार्थ – '*पुर*' का अभिप्राय उन नगरों से था जिनके चारों ओर किलेबन्दी थी। प्रत्येक राज्य में किलेबंद राजधानी होती थी, जिन्हें *दुर्ग* कहा जाता था – इनका वर्णन योजनाबद्ध शहरी नगर के रूप में होता था। ये *दुर्ग,* समस्त देश को शाही मार्गों से जोड़ता था, जिन्हें *राजमार्ग* कहा जाता था। इस समय के *महानगरों* के विषय में भी जानकारी उपलब्ध है। बुद्ध के समर्पित शिष्य आनन्द ने चम्पा, राजग्रह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा बनारस जैसे भव्य *महानगरों* को बुद्ध के अन्तिम विश्राम स्थल के लिये उपयुक्त बताया। *निगमों* से सम्बन्धित अन्य स्थान *पूतभेदन* थे जिनका अर्थ था ऐसे स्थान जहाँ व्यापार या अन्य वस्तुओं के बक्से तोड़े या खोले जाते थे। इस प्रकार *निगम* और *पूतभेदन* वास्तव में स्थानीय बाजार या विनिमय केन्द्र थे। इस प्रकार के स्थानों में बुद्ध ने पाटलीग्राम का वर्णन किया है जिसे *महापरिनिबानसूत्त* में *पूतभेदन* कहा गया है। ये विनिमय केन्द्र अधिकाशतः नदियों को पार करने वाले स्थान पर स्थित थे जैसे – श्रृंगवेरपुर। *राजधानी, दुर्ग* के समान प्रमुख नगर था। साहित्यिक स्रोतों में अक्सर दीवारों, द्वारों, नगर के पहरे की मीनारों तथा शहर की भीड़-भाड़ वाले जीवन का वर्णन है। इन महान शहरों के लिये अन्य शब्द *अग्गनगर* प्रयुक्त किया गया है। *महापरिनिबानसूत्त* में पाटलीग्राम में बुद्ध के आगमन पर लिखा है कि वे यहाँ *पूतभेदन* से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा इस नगर को भविष्य में एक महत्वपूर्ण *अग्गनगर* बनने की भविष्यवाणी की। इस प्रकार ऐतिहासिक साक्ष्य विभिन्न प्रकार के नगरीय केन्द्रों की जानकारी प्रदान करते हैं।

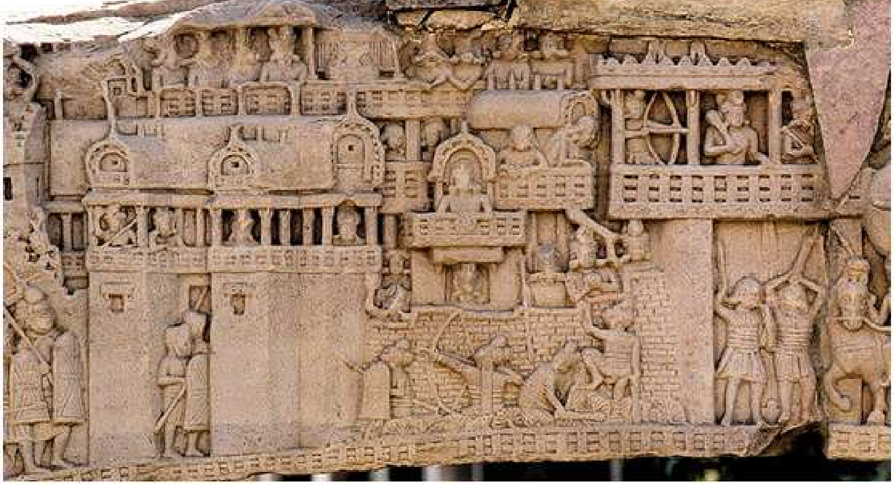

चित्र 13.3 : सांची स्तूप के दक्षिणी द्वार पर चित्र वल्लरी में अंकित 5वीं शताब्दी बी.सी.ई. में कुशीनारा का नगर। श्रेयः असित जैन. स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स https://commons.wikimedia.org/wiki/File:City_of_Kushinagar_in_the_5th_ century_BCE_according_to_a_1st_century_BCE_frieze_in_Sanchi_Stupa_1_ Southern_Gate. jpg

1) महाजनपद और उसकी राजधानी के नाम का मिलान कीजिए :

i)	काशी	क)	वैशाली
ii)	अंग	ख)	वाराणसी
iii)	वज्जी	ग)	कौशाम्वी
iv)	वत्स	घ)	चम्पा

2) समकालीन साहित्य में उल्लेखित नगरों के प्रकारों पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

13.6 नगरीय केन्द्रों में सामाजिक स्तरीकरण

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि नगर विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमियों से लोगों को एक साथ लाते थे।, बौद्ध स्रोतों से हमें विशिष्ट रूप से नगरीय व्यवसायों का वर्णन मिलता है। हमें चिकित्सकों (*वैज्ज, भिसक्क*), शल्य चिकित्सक (*सल्लकट*) तथा लेखकों (*लेख*) का वर्णन मिलता है। लेखांकन (गणना) तथा मुद्रा विनिमय अन्य व्यवसाय थे। संस्कृत और पाली साहित्य में मनोरंजन करने वालों का भी उल्लेख है जैसे अभिनेता (*नट*), नृतक (*नाटक*), जादूगर (*सोकाज्जियक*), कलाबाज (*लंधिक*), ढोलकिया (कुंभथूनिक) तथा महिला ज्योतिश (*इक्कानिका*) कहा जाता था। इनमें से कुछ अन्य अवसरों के अतिरिक्त मेलों में भी अपना हुनर दिखाते थे। बौद्ध स्रोतों में प्रख्यात गणिका आम्रपाली (आंबपाली) का वर्णन है, जिसका वैशाली के वैभव में विशेष योगदान माना जाता है।

साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के अनुसार इस काल के गंगा घाटी में शिल्प उत्पादन में विविधताओं का वर्णन है। इनमें से कुछ शिल्पकार नगरों के बाहर अपनी बस्तियों में रहते होंगे और नगरों के निवासियों को अपने उत्पाद बेचते थे। इन शिल्पकारों में वाहन निर्माता (*यानकार*), हाथीदांत काम (*दंतकार*), धातुकार (कम्मर), सुनार (*स्वर्णकार*), रेशम के बुनकर (*कोसियाकार*), बढ़ई (*पलगंड*), सुईकार (सुचिकार), सरकंडों पर काम करने वाला (नलकार), माला निर्माता (*मालाकार*) तथा कुम्हार (*कुम्भकार*) शामिल थे। हम अगले भाग में कुछ विशेष व्यवसायों पर ध्यान देंगे। नगर राजतन्त्रीय शक्ति के आधार केन्द्र के रूप में विकसित हुए। इन्हें अक्सर ऐसे आर्दश केन्द्र के रूप में प्रदर्शित किया गया जो कि नैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के आदर्शों पर स्थापित थे, जिनमें राजा का स्थान सर्वोच्च था। अनेक स्रोतों में ऐसा वर्णन है कि राजा का परिवार और परिचारक वर्ग विविध था और इसमें काफ़ी लोग काम करते थे। जैसे विभिन्न प्रकार के सिपाही, पैदल, धनुर्धर, घुड़सवार, गजराज तथा सारथी। राजा के कर्मचारियों में – मन्त्री, राजपाल (*रथिक*), सम्पत्ति प्रबन्धक (*पेट्टानिक*), राजमहल अधिकारी (*थापति*), हाथीप्रशिक्षक (*हाथीरोहा*), पुलिस (*राजभट*), जेलर (*बन्धनगारिका*), दास शामिल थे। इस इकाई के अन्त में बाद की दो श्रेणियों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

13.6.1 व्यापार एवं व्यापारी

इस काल में व्यापार इतना अत्यधिक महत्वपूर्ण था, कि पाली साहित्य में व्यापार (*वाणिज्य*) को सर्वोत्कृष्ट व्यवसाय (*उक्कठ कम्म*) के रूप में बारबार बताया गया है। इसके अतिरिक्त केवल कृषि और पशुपालन को इस प्रकार सम्मानजनक व्यवसाय माना गया है। हमारे अध्ययन का काल अतः व्यापारिक गतिविधियों के उदय एवं विकास से सम्बन्धित है। इस काल में *महाजनपदों* के युग में व्यापार में वृद्धि का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण विनिमय का माध्यम सिक्कों का आरम्भ था। पाली साहित्य में सिक्कों का प्रथम निश्चित संदर्भ मिलता है जैसे – *कहापण, निक्ख, कंस, पद, माशक, ककनिक* कहा जाता था।।

चित्र 13.4 : आहत (**Punch marked**) सिक्के, कोसल, कार्शपण लगभग 525-465 बी.सी.ई. श्रेय : क्लासिकल न्यूमिस्मैटिक ग्रुप। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स **https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kosala_Karshapana.jpg**

साहित्यिक स्रोतों की पुरातात्विक स्रोतों से पुष्टि होती है। अनेक स्थलों से आहत सिक्के प्राप्त हुऐ हैं। ये अधिकांशतः चांदी के सिक्के थे। धातु मुद्रा के साथ-साथ विनिमय में गुणात्मक परिवर्तन देखने को मिलता है। इसके साथ नवीन व्यवसायों जैसे – सूदखोरी (साहूकारी) उभरे। पाली साहित्य में हमें अनेकों व्यवसायों के संदर्भ प्राप्त होते है, और – ऋण के साधन, तथा व्यक्तियों द्वारा अपनी धरोहारों को गिरवी रखना, कभी-कभी देनदार द्वारा अपनी पत्नी और बच्चों को जमानत के रूप में रख देना और दिवालियापन के संदर्भ भी मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में ऋणी व्यक्ति संघ में तभी सम्मिलित हो सकता था जब वह अपना ऋण पूर्णतः चुका दे, अन्यथा नहीं। तेजी से बढ़ते हुए व्यापार के परिणामस्वरूप उपयोग के लिये अनेकों भौतिक वस्तुएं भी उपलब्ध हुई। व्यापार के लिये अनेकों लोहे की वस्तुएं, जैसे – फावड़े, कुल्हाड़ी, चाकू तथा कील, खूटी, तीर, बर्तन तथा दर्पण उपलब्ध थे। उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र के पोटवार पठार में नमक का खनन होता था तथा वह गंगा के मैदान तक का लम्बा रास्ता तय करता था। कस्बों में कारीगरों ने वस्त्र, मनके, मृदभांड, हाथीदांत की वस्तुएँ, चीनी मिट्टी के बर्तन, काँच के पदार्थ और अन्य धातुओं की कलाकृतियों का उत्पादन किया जो सभी व्यापार की वस्तुएँ थी।

चित्र 13.5 : अवन्ति महाजनपद के चांदी के आहत सिक्के, लगभग 400 बी.सी.ई. -312 बी.सी.ई.। श्रेय : जौ मिशेल मूलै। स्रोत : बंगाली विकिमीडिया। https://commons.wikimedia.org/wiki/File:I13_12karshapana_Avanti_1ar_(8481304617).jpg

शिल्पियों द्वारा बनाई गई वस्तुएं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों तक जाती थी, जहाँ से सम्भवतः घोड़े वापस लाये जाते थे। साहित्यिक स्रोतों में कम्बल और ऊनी वस्त्रों का भी उल्लेख है, जिन्हें व्यापार के लिये उपयोग में लाया जाता था। वस्तुतः इस काल में दो महत्वपूर्ण परा-क्षेत्रीय मार्गों का वर्णन है – *उत्तरापथ* एवं *दक्षिणापथ*। *उत्तरापथ* उत्तरी भारत का परा-क्षेत्रीय व्यापार मार्ग था। यह गंगा के मैदानों से उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रों से होकर बंगाल की घाटी में ताम्रलिप्ति बंदरगाह तक फैला हुआ था। *उत्तरापथ*, उत्तरी एवम् दक्षिणी भाग में विभाजित था। उत्तरी भाग लाहौर, जालन्धर, सहारनपुर तथा गंगा के मैदान के साथ बिजनौर और फिर गोरखपुर से होते हुऐ बिहार और बंगाल की ओर जाता था। दक्षिण भाग लाहौर, रायविंद, भटिंडा, दिल्ली, हस्तिनापुर, कानपुर, लखनऊ, बनारस तथा इलाहाबाद को जोड़ते हुऐ पाटिलपुत्र एवं राजग्रह पहुँचा। *दक्षिणापथ* जो कि एक महत्वपूर्ण दक्षिण का व्यापार-मार्ग था – इसका वर्णन *अर्थशास्त्र* में मिलता है। यद्यपि यह मार्ग आरम्भिक ऐतिहासिक युग में भी सक्रिय था। यह मार्ग मगध के पाटिलीपुत्र से गोदावरी पर स्थित प्रतिष्ठान तक फैला था। यह मार्ग पश्चिम तट के बन्दरगाहों को भी जोड़ता था। ऐसा माना जाता है कि उस समय जीवक चिकित्सक *दक्षिणापथ* मार्ग से आवंति तक गया। मालवा क्षेत्र से प्राप्त PGW तथा मध्य भारत और दक्षिण भारत से प्राप्त NBPW इस मार्ग की पुरातात्विक पुष्टि करता है।

इन मार्गों से व्यापार भी बड़ी मात्रा में होता था। बौद्ध स्रोतों से हमें ऐसे 1000 गाड़ियों के कारवों का वर्णन मिलता है, जो निर्जन स्थानों से एक *जनपद* से दूसरे *जनपद* पहुँचते थे। यह भी ज्ञातव्य है कि ये कारवां राजा के व्यक्तियों को वर्तमान टोल राजमार्ग की भांति 'कर' देते थे। आरम्भिक ऐतिहासिक भारत के व्यापार मार्ग यहाँ तक कि बौद्ध साहित्य में ऐसे विशिष्ट सीमा-शुल्क अधिकारी (*कम्मिका*) का उल्लेख करते हैं, जो इन व्यापारियों पर कर लगाते थे, यहाँ तक कि कर न देने वाले व्यापारियों की वस्तुएं जब्त कर ली जाती थी (उपिन्दर सिंह, 2008 : 289)। इस प्रकार के व्यापार के विस्तार का अर्थ न केवल माल का विविधकरण था बल्कि उन वर्गों का भी विधिकरण था जो उनका उत्पादन कर रहे थे या उनका व्यापार कर रहे थे।

13.6.2 नवीन निवेशकः *गहपति एवं सेठि*

1) ***गहपति*** – पाली साहित्य में हमें बार-बार *गहपति* शब्द का प्रयोग धनी सम्पत्ति-स्वामी के लिए मिलता है, जो कृषि और भूमि से विशेषरूप से सम्बन्धित थे। *गहपति* का शाब्दिक अर्थ गृह स्वामी या गृह का मुखिया था। *गहपति* के पास अपार सम्पति थी

और वह कोई मामूली व्यक्ति नहीं था। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि उसके इस बड़े धन का आधार क्या था? पाली साहित्य में साधारणतयः उन्हें एक कृषक (*कस्सक*) कहा गया है – परन्तु *गहपति* कोई साधारण कृषक नहीं था। उसकी भूमि संपत्ति इतनी अधिक थी कि उसकी देखभाल के लिये गैर-परिजन श्रमिक भी रखने पड़ते थे। इसका वर्णन हमें *दीघनिकाय* में वर्णित 'मेंडक' के विवरण से प्राप्त होता है। *गहपति* मेंडक के बारे में वर्णित कहानी परोक्ष रूप से हमें *गहपति* के सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक धरोहर की जानकारी देती है। ऐसा माना जाता है कि *गहपति* मेंडक के पास इतनी विशाल भूमि थी कि, उसने दासों, नौकरों और श्रमिक (*दासकर्मकारपोरिस*) कार्य पर रखे थे। इन सभी को मेंडक न केवल वस्तु रूप में भुगतान, जैसे – खाने की वस्तुयें प्रदान करते थे बल्कि इन्हें अर्धवार्षिक वेतन भी देते थे। मेंडक के पास लगभग 1200 चरवाहे (*गोपालक*) थे, जिससे अनुमान लगाया जाता था कि वह दूध का व्यापार करते थे। इसी प्रकार मेंडक, राजा को सहायता भी प्रदान करते थे। वे शाही सेना के लिये रसद उपलब्ध कराते थे। इससे *गहपति* द्वारा प्राप्त राजनैतिक सत्ता और प्रतिष्ठा की जानकारी मिलती है। अन्य अनेकों स्रोत हमें *गहपति* द्वारा दिये गये करों की जानकारी प्रदान करते हैं, जो राज्य के खजाने के संवर्धन के लिये उत्तरदायी थी। *गहपति* के राजनैतिक महत्व की इस तथ्य से भी पुष्टि होती है कि उन्हें चक्रवर्त्ती या विश्व के आदर्श राजा की सात निधियों में से एक माना जाता था।

पाली साहित्य में *गहपति* वर्ग के विषय में प्रशंसात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वास्तव में बौद्ध धर्म के वैधानिक ग्रंथों में *गहपति* वर्ग को एक उत्कृष्ट सामाजिक समूह (*उक्कठकुल*) की संज्ञा दी गयी है।

2) **सेट्ठी :** *सेट्ठी* उच्चस्तरीय उद्योगपति थे जो व्यापार एवं साहूकार से सम्बन्धित थे। विद्वानों के मतानुसार सेठी वर्ग में निवेश, वित्तदाता एवं सौदागर तीनों के सम्मिलित दायित्व थे। *गहपतियों* की भांति *सेट्ठी* भी नये वैधार्मिक सम्प्रदायों के संरक्षक थे। हमें इस प्रकार के अनेक संदर्भ प्राप्त हैं, जिसमें धनी सेट्ठियों का राजगृह और वाराणसी जैसे नगरों में समृद्धिपूर्वक निवास था। *महावग्ग* में *कोलिविसा* नामक सेट्ठी-पुत्र वर्णन मिलता है। इस युवा के विषय में कहा जाता है कि इनका पालन-पोषण इतना आरामदेह भव्य वातावरण में हुआ कि जब वह नंगे पाव भिक्षु का जीवन जीने लगा तो उस नायक के पाव से खून निकलने लगा। इससे भिक्षुओं के जीवन के विषय में भी पुनर्विचार करना पड़ा। बुद्ध ने उसके पश्चात् भिक्षुओं को पैरों में पादुकाओं की अनुमति से इस समस्या का समाधान किया। बुद्ध साहित्य में कहा गया है कि *सेट्ठी* नगरीय समुदाय के प्रभावशाली सदस्य थे, जिनकी राजा तक पहुँच और सम्पर्क था। *सेट्ठी* एवं *सेट्ठी गहपतियों* की सम्पन्नता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि वे राजाओं के साथ-साथ प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक के सेवार्थीवृंद थे तथा चिकित्सा के भुगतान के रूप में हजारों *कहापण* दिया करते थे।

13.7 समाज

कृषि के विस्तार एवं शिल्पकारों के उद्‌भव के लिए अधिक विशेषज्ञता की आवश्यकता हुई। विभिन्न व्यवसायों से शिल्पकारों, कृषकों एवं श्रमिकों की पृथक श्रेणियों को प्रोत्साहन मिला। इनमें से प्रत्येक को अलग जाति के रूप में देखा जाने लगा। जाति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के '*जात*' मूल से हुई, जिसका अर्थ है 'जन्म' और इसका वर्ण की तुलना में अभिप्राय भिन्न है (थापर, 2002 : 123)। वर्णों का सम्बन्ध अनुष्ठानिक स्थिति से था। शूद्रों को इन सभी धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेना मना था। दूसरी ओर, अन्य तीन वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)

द्विज थे। 'द्विज' (दो बार जन्म) जो कि उपनयन के अधिकारी थे जो उनके दूसरे जन्म को दर्शाता है। जाति और वर्ण दोनों सामाजिक समूहों के रूप में विवाह को विशेष दायरे में नियमित करते थे तथा पैत्रक व्यवसाय अपनाते थे। प्रश्न उठता है कि फिर वर्ण और जाति में क्या अन्तर था?

प्रथम जबकि वर्ण की संख्या चार निश्चित थी, जातियों की संख्या असंख्य थी तथा उनकी संख्या व्यवसायों और नये क्षेत्रों के विकास के साथ ब्राह्मणवादी समाज में बढ़ती गयी। इसी प्रकार वर्णव्यवस्था में पदानुक्रम स्थाई था। जहाँ ब्राह्मण का स्तर सर्वश्रेष्ठ था, शूद्र का निम्नतम था। हालांकि जातियों का स्तर क्षेत्रों के अनुसार लचीला था। जिसका आधार मुख्यतः भूमि धन, राजनैतिक एवं सैनिक सत्ता पर अधिकार पर निर्भर करता था। तीसरा – यद्यपि दोनों समूहों में अन्तर्विवाह आदर्श माना जाता था, (जाति अपने ही वर्ण में या समूह में विवाह) कुछ अंर्तवर्ण विवाह भी मान्य थे। उदाहरणार्थ, *धर्मशास्त्रों* में उच्च वर्ण के पुरुष का विवाह निम्न वर्ण की कन्या के साथ हो सकता था, इस प्रकार के विवाह को अनुलोम विवाह कहा जाता था। दूसरी ओर *धर्मशास्त्रों* में प्रतिलोम विवाह, जिसमें निम्न वर्ण से उत्पन्न पुरुष उच्च वर्ण की कन्या से विवाह करता था निन्दित था। इस प्रकार के विवाहों की ग्रंथों में चर्चा यह दर्शाती हैं कि यद्यपि नकारात्मक तरीके से परन्तु यह सत्य है कि इस प्रकार के विवाह प्रचलित थे तथा वर्ण पूणतः अन्तर्विवाह पर आधारित नहीं थे। दूसरी ओर जातिय कठोरता अन्तर्विवाह पर टिकी थी।

इसी प्रकार जाति व्यवस्था में खाने-पीने की वस्तुओं का लेन-देन, भागेदारी तथा छुआ-छूत के नियम भी स्पष्ट रूप से परिभाषित थे। विभिन्न वर्गों में कुछ खाने से सम्बन्धित वस्तुओं को उच्च वर्ण निम्न सामाजिक वर्णों से विशेष परिस्थिति में ग्रहण कर सकते थे। इसके अतिरिक्त वर्ण अनेक प्रकार के व्यवसायों से जुड़े थे जबकि जाति कुछ विशिष्ट व्यवसायों को ही अपना सकती थी।

दोनों व्यवस्थायें एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित थे। उदाहरणार्थ – पालि साहित्य में इस बात का उल्लेख प्राप्त है कि *उक्कट्ठ* (उच्च) जातियों के व्यवसाय (कम्म) और शिल्प (सिप्प) उच्च थे और इसी प्रकार निम्न जाति (हीन) के छोटे व्यवसाय और शिल्प में संलग्न होने का वर्णन है। उच्च जाति में *खातिय, ब्राह्मण* और *गहपति* शामिल थे। इन वर्णों का सम्बन्ध उत्कृष्ट व्यवसायों से था, जैसे – कृषि, पशुपालन एवं व्यापार। इसके साथ-साथ अन्य उच्च श्रेणी के व्यवसाय लेखाकार, गणनाकार तथा शाही कार्यकर्त्ता (राजपोरिस) थे। निम्न हीन जातियों के व्यवसायों में टोकरी बनाना (वेना जाति), धोबी (*रजक*), नाई (*नाहपित*), शिकारी (*निशाद* जाति) मेहत्तर (पुक्कुस जाति) तथा चंडाल आदि थे।

चंडाल, जिन्हें पांचवें वर्ण में रखा गया है, उनका स्थान शूद्रों से भी निम्न बना दिया गया था। चंडालों के साथ अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता था, वे लोग बस्तियों के बाहर रहने को विवश थे और मुख्यतः शिकार करके और खाने की अन्य वस्तुओं को एकत्र कर अपना पालन पोषण करते थे। उनके व्यवसायों जैसे – दर्री बुनना, शिकार करना अत्यन्त निम्न व्यवसायों में से था।

समाज में इसी प्रकार के निम्न स्तर में एक अन्य सामाजिक समूह था जिन्हें दास (*दास* और *कर्मकार*) कहा जाता था। बौद्ध ग्रंथ *दीघनिकाय* में कहा गया है कि दास वह व्यक्ति है, जिसका अपने उपर कोई अधिकार नहीं है, वह दूसरों पर निर्भर होता है। जहाँ वह स्वयं जाना चाहे वह नहीं जा सकता। इस समय के ग्रंथों में हमें महिला और पुरुष दास एवं दासियों का उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ – *विनय पिटक* में तीन प्रकार के दासों का

उल्लेख है – *अन्तोजातको* – जो कि महिला दासी से जन्मे थे, *धनक्कितो* – जिसे दास की भांति खरीदा गया हो तथा *कर-मर-अनितों,* जिसे अन्य किसी राज्य से (देश) लाकर दास बनाया गया हो।

चूंकि हमारे ऐतिहासिक स्रोत भी मुख्यतः अभिजात वर्ग से सम्बन्धित हैं, अतः इतिहासकारों के लिए इन उपेक्षित वर्गों के जीवन, विचार, राय की पुर्नरचना अत्यन्त कठिन है। हमारे समक्ष सबसे बड़ी चुनौती समस्त स्रोतों को सावधानी पूर्वक एवं सृजनात्मक तरीके से प्रयोग करना है, ताकि हम प्राचीन अतीत के अंतराल को भर सकें।

बोध प्रश्न 2

1) सोलह *जनपदों* को सूचीबद्ध करें। क्या इन सोलह राज्यों में केवल राजतंत्रीय व्यवस्था थी? अगर नहीं तो गैर-राजतंत्रीय राज्य व्यवस्थायें कौन कौन सी थी? वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) इस अवधि में शूद्र और *दासों* की क्या स्थिति थी?

....

....

....

....

....

3) सही या गलत चिन्हित करें :

क) गाँवों की तुलना में नगरीय समाज अधिक लचीला था और लोगों को उनकी प्रथागत परम्पराओं से परे पेशेवर और व्यक्तिगत विविधता की अनुमति देता था।

ख) सभी *जनपदों* की शक्ति और स्थिति समान थी।

13.8 सारांश

इस इकाई में हमने उन राज्यों और नगरों के विषय में पढ़ा जिनका उद्‌भव विशेष रूप से गंगा घाटी में हुआ। इस अवधि में कृषि की वृद्धि या विस्तार, व्यापार की व्यापक शुरुआत व विभिन्न राजव्यवस्थाओं में संघर्ष हुए। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में आते-आते सोलह *महाजनपदों* में से चार राज्य अत्यन्त शक्तिशाली राज्यों के रूप में उभरें, ये वृज्जि गणसंघ के अतिरिक्त मगध, कोसल, वत्स, अवन्ति थे। समय के साथ-साथ इन राज्यों के मध्य युद्ध, युद्ध सन्धि, सैनिक, वैवाहिक सम्बन्धों आदि क्षेत्रों में भी उतार-चढ़ाव देखने को मिलते हैं। शक्ति के लिये लम्बे समय तक संघर्ष में मगध सर्वशक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. में सामाजिक स्तरीकरण एवं राज्य गठन को महत्वपूर्ण गति प्राप्त हुई। इस समय में अधिशेष की प्रचुर मात्रा गैर उत्पादक समूहों को भी बनाये रखने के लिए

पर्याप्त था। इसमें व्यापारी, सौदागर, प्रशासनिक वर्ग, ब्राह्मण, मठाधीश सम्मिलित थे। व्यापार के विस्तार में शिल्प के विशेषीकरण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वस्तु विनिमय का युग समाप्ति की ओर था। अब साधारणतः विनिमय का माध्यम मुद्रा हो गयी थी, जिसे *कार्शपण* कहते थे। यह मुद्रा तांबा व चांदी से निर्मित थी, तथा उनकी मानकता के लिये उन पर राजा या व्यापारियों के श्रेणी (Guild) के चिन्ह अंकित होते हैं। धन के विनिमय में आयी वृद्धि से सूदखोरी का आरम्भ हुआ तथा धन को उधार देने वाले व्यवसायों का भी उदय हुआ जिसने समाज में वर्ण व्यवस्था के परे सामाजिक वर्गों को जन्म दिया।

13.9 शब्दावली

अनुलोम : उच्च वर्ग के पुरुष और निम्न वर्ण की महिला के बीच विवाह।

गहपति : धनी भूस्वामी, जिनके पास बड़ी भू-सम्पतियाँ थी। ये अपने नातेदारी से बाहर श्रमिकों से काम लेते थे।

गणसंघ : ऐसे गैर-राजतंत्रीय व्यवस्था जिसमें सत्ता समूह द्वारा निर्धारित हो।

जनपद : सुनिश्चित क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग, जो राजनैतिक सत्ता द्वारा शासित थे।

जाति : वर्ण से भिन्न व्यवसायिक समूह। इनमें से जातियों और उपजातियों के समूह विशेष व्यवसायों से सम्बन्धित थे। वे संख्या में इतने अधिक थे कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी।

महाजनपद : ऐसे बड़े व शक्तिशाली *जनपद*, जिनके शासक अधिक शक्तिशाली क्षेत्रीय सत्ता का उपयोग करते थे।

NBPW : उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड, सातवी शताब्दी बी.सी.ई.– दूसरी ओर प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. तक।

प्रतिलोम : एक उच्च वर्ण की स्त्री और निम्न वर्ण के पुरुष के बीच विवाह।

सेट्ठि : व्यापार, वित्तपोषक, व्यापारियों के उद्यमी।

नगरीय केन्द्र : वे क्षेत्र जो गांवो की अपेक्षाकृत अधिक जनसंख्या वाले थे, जहाँ गैर-कृषि व्यवसाय किये जाते थेः यह शक्ति का केन्द्र या शिल्प से बनी वस्तुएं के उत्पादन व वितरण के केन्द्र अथवा व्यापारिक मार्गों पर बने ऐसे स्थान जहाँ पर व्यापारी बाजार में अपने उत्पाद को बेच या खरीद सकते थे।

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) ख
   ii) घ
   iii) क
   iv) ग

2) आपके उत्तर में आपको *पुर, दुर्ग, निगम* और *नगर* जैसे विभिन्न शब्दों को जिस तरह साहित्य में प्रयोग किया गया है, उल्लेख करना है। उप-भाग 13.5.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 13.3

2) देखें भाग 13.7

3) क) सही

   ख) गलत

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

चक्रवर्ती, रणबीर (2016). ऐक्सप्लोरिंग अर्ली इंडिया अप टू ऐ.डी. 1300. थर्ड ऐडिशन, दिल्ली : प्राईमस बुक्स.

झा, डी.एन. (2010). *ऐशियंट इंडिया : इन हिस्टोरिकल आऊटलाईन.* रिवाईज्ड एंड ऐनलार्जड ऐडिशन. दिल्ली : मनोहर.

कौल, शोनालिका (2010). *ईमेज़िनिंग द अर्बन : संस्कृत ऐंड द सिटि इन अर्ली इंडिया.* नई दिल्ली : पर्मानेंट ब्लैक.

शर्मा, आर. एस. (1983). *मैटिरियल कल्चर एंड सोशल फार्मेशन इन ऐशियंट इंडिया.* दिल्ली : मैकमिलन बुक्स.

सिंह, उपिन्दर (2008). *ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट एंड अर्ली मेडिवल इंडिया : फ्रॉम द स्टोन ऐज टू द 12वीं सेन्चुरी.* दिल्ली : पियरसन लौंगमैन.

थापर, रोमिला (2002). *द पेन्गुईन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया. फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ऐ. डी. 1300.* लंडन : पेन्गुईन बुक्स.